पद्माकर : कवित्व का पूर्णत: निर्वाह करते हुए नवरसों का सफल निरूपण करनेवाले गिने-चुने आचार्यों में पद्माकर का नाम लिया जा सकता है। ये तैलंग ब्राह्मण थे और इनका जन्म १७५३ ई. में मध्यप्रदेश के सागर नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता मोहनलाल भट्ट भी अच्छे कवि थे और सामान्यत: अनुष्ठान और मन्त्र-साधना का कार्य करते थे। ये सागर-नरेश रघुनाथराव अप्पा, महाराज जैतपुर, सुमरा-निवासी नोने अर्जुनसिंह, दतिया-नरेश महाराज पारीक्षित, शुजाउद्दौला के जागीरदार गोसाईं अनूपगिरि (उपनाम हिम्मतबहादुर), सितारा-नरेश रघुनाथराव, जयपुर-नरेश प्रतापसिंह और उनके पुत्र जगतसिंह, उदयपुर-नरेश महाराज भीमसिंह तथा ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धिया के आश्रय में रहे। १८३३ ई. में कानपुर में इनकी मृत्यु हुई। इनके द्वारा रचित ये सात मौलिक ग्रन्थ मिलते हैं—हिम्मतबहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध-पचासा, गंगालहरी, प्रतापसिंह विरुदावली और कलिपच्चीसी। इनके अतिरिक्त इनके अनेक स्फुट छन्द भी मिलते हैं। कहते हैं कि वाल्मीकि-रामायण, हितोपदेश आदि संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद भी इन्होंने किये थे। मौलिक ग्रन्थों में 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद' ही रीतिग्रन्थ हैं—शेष राजप्रशस्ति अथवा भक्ति और वैराग्य सम्बन्धी हैं। इन रीतिग्रन्थों में क्रमश: अलंकार और नवरस-विवेचन किया गया है। 'पद्माभरण' १८१० ई. में रचा गया बताया जाता है। 'जगद्विनोद' की रचना १८०३ और १८२१ ई. के बीच् महाराज जगतसिंह के आश्रय में उनकी आज्ञा से हुई।

'जगद्विनोद' में छह प्रकरण और ७३१ छन्द हैं। आरम्भ में आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिकाभेद और चार प्रकार के दर्शन का विवेचन करने के अनन्तर उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नायक के सखाओं, नायिका की सखी, तीन प्रकार की दूतियों तथा षड्ऋतुओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। तदनन्तर शृंगार रस के अनुभावों के विवेचन के व्याज से आठ सात्त्विक भावों और बारह हावों का वर्णन करते हुए शृंगारादि नव रसों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लक्षण सामान्यत: दोहों में हैं और उदाहरण कवित्त, सवैया, दोहा आदि में। लक्षणों को देखने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकार मूलत: 'रसमंजरी', 'रसतरंगिणी', 'साहित्यदर्पण', 'रसिकप्रिया', 'सुधानिधि' आदि ग्रन्थों का ऋणी रहा है। अतएव मौलिकता की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं। ग्रन्थ की विशेषता

यही है कि लक्षण सुबोध और स्पष्ट तथा उदाहरण तदनुरूप एवं सरस हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं ब्रजभाषा-गद्य का आश्रय भी लिया गया है। किन्तु फिर भी, लक्षणों में वह सूक्ष्मता और शास्त्रीयता नहीं आ पायी जो संस्कृत-आचार्यों के लक्षणों में मिलती है।

कवित्व की दृष्टि से यदि पद्माकर की रचनाओं की परीक्षा की जाये, तो कहना होगा कि इनके द्वारा गृहीत तीनों विषयों —शृंगार, राजप्रशस्ति और भक्ति में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इस दिशा में इनकी सबसे बड़ी विशेषता बिम्ब-योजना है जिसमें रेखाएं और रंग ही अत्यन्त स्पष्ट होकर नहीं आये; उनमें यथावश्यकता भावात्मकता, गति और स्थैर्य का सन्निवेश भी कुछ ऐसे कौशल के साथ हुआ है कि वे सहृदय के मन पर आत्मविभोर कर देनेवाला आह्लादक प्रभाव छोड़ जाते हैं। भाषा भी बिम्बों और उनकी रेखाओं के अनुरूप इतनी सधी हुई एवं सौष्ठव-सम्पन्न है कि प्रत्येक शब्द की योजना देखते ही बनती है। इधर कवित्तों और सवैयों का प्रयोग भी विशेष प्रकार के गम्भीर संगीत की सृष्टि कर रचनागत बिम्ब के अनुकूल वातावरण ही उत्पन्न नहीं करता, प्रत्येक रेखा के धर्म को भी व्यंजित करता चलता है। कहना न होगा कि इन्हीं विशेषताओं के कारण ये परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय बन गये। एक छन्द द्रष्टव्य है :

सिन्धु के सपूत सुत सिन्धु तनया के बन्धु
मन्दिर अमन्द सुभ सुन्दर सुधाई के।
कहै 'पद्माकर' गिरीस के बसे हौ सीस
तारन के ईस कुलकारन कन्हाई के।।
हाल ही के बिरह बिचारी ब्रजबाल ही पै
जाल से जगावत जुआल सी जुन्हाई के।
ए रे मतिमन्द चन्द आवत न तोहैं लाज
ह्वै कै दुजराज काज करत कसाई के।।